REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2018

कोणार्क : समकालीन भावात्मक मानविय संवेदना

डॉ. विनयकुमार एस. चौधरी
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, तुलजापुर (महाराष्ट्र).

प्रस्तावना :

हिंदी नाटय साहित्य में कोणार्क और नाटककार जगदीशचंद्र माथुर का स्थान बेमिसाल रहा है। आलोचको ने कोणार्क की काफी तारीफ की है। माथुरजी ने कोणार्क का निर्माण एक नये आयाम के साथ किया है। और संपुर्ण नाटक अनेक दृष्टियों से सर्व प्रथम और पूर्ण नाटक माना है। नाटककार ने इस नाटक में दो पीढियों के अंतराल और दृष्टि–वैभिन्य को तो उजगार किया ही है, आधुनिक संघर्षशील, बौध्दिकता संपन्न, कर्मरत, विद्रोही कलाकार को भी उभारकर रख दिया है। सुमित्रानंदन पंत का बयान महत्वपुर्ण है – 'कलाकार का बदला जीवन – सौंदर्य को ही चुनौती नहीं देता अत्याचारी को भी जैसे सुर्यहीन लोक के अतल अंधकार में डाल देता है। सहनशील विशु तथा विद्रोही धर्मपद में जैसे कला के प्राचीन नवीन युग मुर्तिमान हो उठे हैं। धर्मपद में आधुनिक कलाकार का विद्रोह ही व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है। आज के राजनीतिक – आर्थिक संघर्ष में जर्जर युग में कोणार्क के द्वारा कला और संस्कृति जैसे अपनी चिरंतन उपेक्षा का विद्रोहपुर्ण संदेश मनुष्य के पास पहुंचा रही हैं।' (कोणार्क, सुमित्रानंदन पंत की भूमिका में से) इतिहास के फलक पर कलाकार की शाश्वत कला चेतना के द्वंद्व को युग संदर्भ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समकालीन भावात्मक मानविय संवेदना को जीवित अभिव्यक्ति दी है, इस दृष्टि से हिंदी नाटक को एक नया मोड देनेवाला युगांतरिक नाटक है।

नाटक की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। उत्कल नरेश नरसिंहदेव की कामना से पीछले बारह वर्षो से बारह सौ शिल्पी उत्कलराज्य का प्रधान शिल्पी विशु की एक कल्पना को कोणार्क के सुर्य मंदिर को पुरा कर रहे है। परंतु महाशिल्पी विशु चिंतित है कि, मंदिर के शीर्ष पर दस दिनों की लगातार चेष्टा से भी वे कलश स्थापित नहीं कर पाये है। चिंता के इन क्षणों में उसे अपनी प्रेयसी का स्मरण हो आता है जिसका वियोग उसकी कला व उद्‌गम – स्थल है। वह अपने दोस्त अपनी उस कायरता की कहानी सुनाता है कि जबवह अपनी गर्भवती प्रेमिका शबर कन्या सारिका को छोड आया था। इसी समय राजीव विशु की भेंट एक प्रतिभा संपन्न युवक शिल्पी धर्मपद से करता है जो मंदिर के अम्ल पर कलश स्थापित करने को कठिन नहीं मानता। तभी अचानक महामात्य चालुक्य विशु को यह चेतावनी देकर चले जाते है कि यदि एक सप्ताह के भीतर कोणार्क मंदिर के अम्ल पर कलश स्थापित करने को कठिन नहीं मानता। तभी अचानक महामात्य चालुक्य विशु को यह चेतावनी देकर चले जाते है कि यदि एक सप्ताह के भीतर कोणार्क मंदिर का निर्माण पूरा न हुआ तो सभी शिल्पयों के हाथ काट दिये जायेंगे। इस धमकी से विशु और शिल्पी भयाक्रांत हो जाते है, किंतु धर्मपद की प्रतिभा और युक्ति से कमल की आकृति (अम्ल) पर कलश स्थापित हो जाता है।

धर्मपद के कार्य के पुरस्कार स्वरूप मंदिर प्रतिष्ठापन के दिन प्रधान शिल्पी का पद ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त करता है और महाराज नरसिंहदेव को उनकी अनुपस्थिति में महामात्य चालुक्य द्वारा शिल्पियों पर किये गये अत्याचारों की जानकारी देता है। महाराज शिल्पियों को प्राप्त सभी सुविधाएँ लौटा देने के साथ पुरस्कृत करने की भी घोषणा करते है, किंतु इसी बीच चालुक्य अपने षडयंत्र से कोणार्क को तीन ओर से घेरकर महाराज को आत्मसमर्पण के लिए विवश करता है। धर्मपद के साहस से प्रेरित होकर महाराज महामात्य के प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं और कोणार्क मंदिर से ही दुर्ग का काम लिया जाता है। नरसिंहदेव धर्मपद को

कोणार्क का दुर्गपति बनाते है और मंदिर के शिल्पी वीरतापूर्वक अत्याचारी चालुक्य को सेना का प्रतिरोध – प्रतिशोध लेते हैं। जिसमें धर्मपद घायल और मूर्च्छित हो जाता है। धर्मपद के गले की माला गिर जाती है जो विशु के हाथ लगती है और उसे यह पहचानते देर नहीं लगती कि धर्मपद उसका और सारिका का पुत्र है। इस तरह पिता–पुत्र का सत्रह वर्षो के बाद मिलन होता है।

इस बीच महाराज नरसिंह देव को जल मार्ग द्वारा कोणार्क मंदिर से बाहर भेज दिया गया है। चालुक्य और उसकी सेना मंदिर में प्रविष्ट होकर शिल्पीयों का संहार कर रही है, पर मोहविष्ट विशु अपने पुत्र धर्मपद को बचाना चाहता है, किंतु धर्मपद रूकता नहीं। वह आत्म बलिदान द्वारा इस यज्ञ में अंतिम आहुति देता है। पुत्र शोक विशु के प्रतिशोध को उद्दीप्त कर देता है। वह मंदिर में पहुंचकर रौद्र – रूप धारण कर उस चुंबक को तोड देता है जिसके सहारे कोणार्क का मंदिर निराधार टिका था। चुंबक के टुटते ही मंदिर धाराशायी हो जाता है और अत्याचारी चालुक्य इसके सैनिक स्वयं विशु तथा बचे शिल्पी उसी में सदा के लिए सो जाते है। जिस इच्छा से यह भव्य सपना साकार हुआ था, जो सुंदर मंदिर बनवाया था वह एक दुर्ग बनकर शिल्पी तथा मंदिर निर्माता और अत्याचारी का भी कारूणिक अंत होता है।

कोणार्क की विशेषता यह है कि प्रत्येक अंक शुरूवात में उपक्रम, उपकथन और अंत में उपसंहार मिलता है। बौध्दिकता, विद्रोह, पौरूष और मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण कोणार्क की आधुनिकता अपनी ऐतिहासिकता के बावजूद अक्षुण्ण है। सत्ता और शिल्पी का संघर्ष, अत्याचार और विद्रोह का संघर्ष ही नाटक की मूल जान है। नाटक में धर्मपद कहता है – ' आज शिल्पी पर अत्याचार का प्रहार हो रहा है। कला पर मदांधता टूट पडी है। सौंदर्य को सत्ता पैरों के तले रौंद रही है। और कोणार्क–आपका सुनहरा सपना, जिस घोंसले में आपके अरमानों का पंछी बसेरा लेने जा रहा था – वही कोणार्क, एक पामर, पापी, अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जायेगा। आतंक के हाथों में जकडी हुई कला सिसकेगी। वही कारीगर की सबसे बडी हार होगी, सबसे भारी हार।' (कोणार्क पृ.64) स्पष्टतःएक कलाकार विशु अत्याचार और शोषण पर बेबस है तो दूसरा धर्मपद विद्रोह के लिए बेताब है, जो सदियों के मौन को वाणी देता है। स्वयं माथुरजी लिखते है – 'मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग–युग से मौन पौरूष जो सोंदर्य– सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है। कोणार्क के खंडन के क्षण में फूट निकला हो। चिरंतन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरूष को मैंने वाणी देने की धृष्टता की है।' (कोणार्क – जगदीशचंद्र माथुर, परिचय पृ.14)

विशु का सारिका का प्रेम में भगोडापन उसे अत्याचार और शोषण के वक्त संघर्ष करने के लिए कायरता प्रदान करता है, तो धर्मपद को मां सारिका के साथ प्यार का नाटक करनेवाले के प्रति विद्रोह भर देता है। नाटककार ने अनायास दो पीढी का संघर्ष सफलता से चित्रित किया है। विशु प्राचीन या परंपरागत कलाकार का प्रतिनिधित्व करता है। तो धर्मपद आधुनिक कलाकार का। दोनों का कला के प्रति देखने का दृष्टिकोण भिन्न है। विशु कला को परंपरागत जीवन मानता है जिसमें – मनोरंजन, वासना, शील – अश्लील, प्रेम आदि का ब्यौरा हो। तो धर्मपद इन युग्म जोडीयों देखकर कला को अधूरी मानता है–'जब मैं इन मूर्तियो में बंधे रसिक जोडों को देखता हूं तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरूध्द नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन–दिन भर कुल्हाडी लेकर खटने वाले लकडहारे की' (कोणार्क – पृ.30) इस प्रकार विशु परंपरागत कला व सृजन करता है तो धर्मपद सामान्य जन का दुख पीडा, व्यथा को अपनी कला में स्थान देता है। जो आम आदमी का दुख जानता है वही संघर्ष और विद्रोह को भी जानता है। धर्मपद बेधडक महाराज नरसिंहदेव को चालुक्य के बारे में कहता है – 'बहुत हुआ, बहुत! क्या हम लोग भेड – बकरियाँ है जो चाहे जिसके हवाले कर दी जायें ? जिस सिंहासन को तुम आज डावाँडोल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कंधो पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकडों घर उजड चुके हैं ?' (कोणार्क पृ.48) नाटककार ने पात्रों के माध्यम से कला, संस्कृति, सभ्यता के साथ अन्याय – अत्याचार, शोषण, संघर्ष और विद्रोह पर बखुबी से गौर किया है। इससे यह साबित होता है कि, सचमुच माथुरजी महान नाटककारों की पंक्ति में अव्वल हैं।

संदर्भ संकेत :–

1) कोणार्क : जगदीशचंद्र माथुर
2) समकालीन नाटय विवेचन : डॉ. माधव सोनटक्के